ओ३म्
ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद अथर्ववेद
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्...
राष्ट्रीय आर्यनिर्मात्री सभा

ऋषि दयानन्द

तिथि–10 सितम्बर 2017
सृष्टि संवत्- १, ९६, ०८, ५३, ११८
युगाब्द-५११८, अंक-८९, वर्ष-१०
आश्विन मास, विक्रमी २०७४ (सितम्बर 2017)
मुख्य संपादक : हनुमत्प्रसाद 'अथर्ववेदाचार्य'
कार्यकारी संपादक : आचार्य सतीश
सम्पर्क सूत्र: 9350945482
Web: www.aryanirmatrisabha.com
E-mail : krinvantovishwaryam@gmail.com

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

(राष्ट्रीय आर्यनिर्मात्री सभा का मासिक विचार पत्र)

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम्। पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये॥–ऋ० १। ६। १५। ५

व्याख्यान–हे सर्वाधिस्वामिन्! आप ही [(जगतः तस्थुषः)] चर और अचर जगत् के (ईशानम्) रचनेवाले हो। (धियञ्जिन्वम्) सर्वविद्यामय, विज्ञानस्वरूप बुद्धि को प्रकाशित करनेवाले, सब को तृप्त करनेवाले प्रीणनीयस्वरूव (पूषा) सब के पोषक हो। उन आपका हम (नः अवसे) अपनी रक्षा के लिए (हूमहे) आह्वान करते हैं। (यथा) जिस प्रकार से आप हमारे विद्यादि धनों की वृद्धि वा रक्षा के लिए (अदब्धः रक्षिता) निरालस रक्षा करने में तत्पर हो, वैसे ही कृपा करके आप (स्वस्तये) हमारी स्वस्थता के लिए (पायुः) निरन्तर रक्षक (विनाशनिवारक) हो। आपसे पालित हम लोग सदैव उत्तम कामों में उन्नति और आनन्द को प्राप्त हों॥

सम्पादकीय

निरीह जनता- शहंशाह गुरु

प्राचीनकाल में समस्त संसार में एक ही मत था। एक ही ईश्वर की मान्यता और तदनुसार चार आश्रमों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास) में विभाजित व्यवस्थाओं के अनुरूप चार वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र) अपने-अपने कर्मानुसार व्यवस्थाओं में प्रयत्नशील रहते हुए पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष) के लिए प्रयत्नशील रहते थे। प्रथम ब्रह्मचर्य आश्रम में विद्या देने वालों को गुरु, आचार्य कहा जाता था। इसके अतिरिक्त माता, पिता भी सत्यशास्त्र सम्पन्न होकर जब अपने-अपने बालक/बालिकाओं को प्राथमिक शिक्षादि देते थे तब उन्हें भी गुरु जैसा गौरवास्पद स्थान प्राप्त था। यदा-कदा गृहस्थों के घरों पर विद्या से परिपूर्ण जीवन के अनुभवों से परिपुष्ट वानप्रस्थी एवं तपःपूत त्यागमूर्ति संन्यासी आकर जब सदुपदेश करते थे, तब उन्हें भी 'गुरु' शब्द के सम्बोधन से जन-जन गौरव देता था। धर्म और कर्म अभिन्न रहते थे, मन्त्र अर्थात् जीवनदायी सिद्धान्त, विचार-गोपनीय नहीं, प्रत्युत जन-जन में प्रचारित-प्रसारित किये जाते थे। जनता जागरूक, धर्मपरायण सुखपूर्वक जीवनयापन करती थी।

महाभारतकाल से कुछ वर्ष पूर्व आश्रम व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था में अवमूल्यन प्रारम्भ हुआ, जिसके परिणाम स्वरूप पुरुषार्थ चतुष्ट्य में आलस्य-प्रमादादि बढ़ते गये, शिक्षक-गुरु, शासक-राजा यह दोनों जो विद्या से एवं दण्डव्यवस्था से जनता को चहुँओर से सुरक्षित करते थे, सांसारिक सुख, संसाधनों की प्राप्ति को ही अभीष्ट मानकर उन्हीं की येन-केन प्रकारेण उपलब्धि के लिए लालायित रहने लगे। शिक्षक अपने स्वार्थवश शास्त्रों की मनमानी व्याख्याएं करने लगे तो शासक अपने स्वार्थनुसार व्याख्याएं करवाने लगे। परिणामतः लोग अर्थात् जनता भी अपने स्वार्थों की पूर्ती में विचरण करने में ही अपनी बुद्धिमत्ता समझने लगी, परिणामतः विभिन्न मत-मतान्तर, मूढ़ मान्यताएं नित नये-नये रूपों में प्रकट होते चले गये, परस्पर एक दसरे की उन्नति के स्थान पर एक दूसरे की अवनति, पतन के आकांक्षी हो गये, इस परस्पर की फूट के परिणास्वरूप करोड़ों वर्षों तक अजेय, अपराजेय रहने वाले हमारे श्रेष्ठ पूर्वजों के पथ से पथभ्रष्ट हुए हम गुलाम हुए, फिर गुलामों के भी गुलाम। नाना प्रकार के अज्ञान, अविद्या एवं अन्धविश्वास के अन्धकार में भटकते चले गये, जिसमें एक बड़ा भारी अन्धविश्वास 'गुरु' शब्द के साथ भी प्रारम्भ हो गया, जिसके लिए अनेक प्रकार के श्लोक लिखे गये, सूक्ति आदि रची गई, और 'गुरु' को परमपिता परमात्मा से भी ऊपर रख दिया गया, जिससे अवनति की, पतन की एक और खाई खुद गयी और हजारों-लोखों ही नहीं करोड़ों लोग इस खाई में गिर पड़े। जीवन बीत गया, किन्तु खाई से बाहर न निकल पाये। देखिए-

१. **गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः, गुरुर्देवो महेश्वरः।**
गरुर्साक्षात् परब्रह्म, तस्मै श्री गुरवे नमः॥

२. **गुरुगोविन्द दोऊ खड़े काके लागौं पाय।**

शेष अगले पृष्ठ पर

संपादकीय का शेष...

बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो बताय॥

३. **सब धरती कागद करूं, लेखनि करूं बनराय।**
सात समुद्र की मसि करूं, गुरुगुण लिखा न जाय॥

४. **गगन मण्डल अमृत का कुआं, जहां ब्रह्म का वासा।**
सगुरा होवे भर-भर पीवे, निगुरा मरत पियासा।

पाठक गणों! इस देश की समस्त बाबा परम्परा इन्हीं जैसे आधार विहिन, विवेक विहिन श्लोकों, दोहों को वेद वाक्य समझकर, मानकर लाखों-करोड़ों लोगों को अपनी महिमा समझाती है, बाबा लोग कहते हैं कि देखो जब आप संसार छोड़कर जाओगे, तब जिसने गुरु बनाया है, गुरु के प्रति श्रद्धा रखी है, गुरु को तन-मन-धन अर्पित किया है, वही अमृत का पान करेगा और जिसने गुरु नहीं किया जिसकी गुरु के प्रति श्रद्धा नहीं है, जो गुरु को तन-मन-धन अर्पित नहीं करता, वह अमृत का पान नहीं कर सकता, वह तड़पता है, प्यासा रहता है, क्योंकि 'गुरु' तो भगवान से भी बड़ा होता है, देखो कबीरदास जी ने कहा है- गुरु ही ब्रह्मा है, गुरु ही विष्णु है, गुरु ही शिव शंकर है, और तो और गुरु तो परब्रह्म है, इसलिए गुरु प्रसन्न तो सब प्रसन्न, गुरु रूठ गया तो कहीं कोई ठौर नहीं है। **'हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठै नहि ठौर'**।

तब हजारों वर्षों से अज्ञान, अविद्या से ग्रस्त गुलामी के संस्कारों से ओत-प्रोत निरीह जनता, भोले-भाले लोग अपने-अपने सम्पर्क, सामर्थ्य के अनुसार बड़े से बड़े 'गुरुजी' की खोज में लग जाते हैं, जहाँ अधिक से अधिक भीड़ हो, चमत्कारी कथाएं हों, ऊंचे से ऊंचा सिंहासन हो, 'गुरुजी' को देखने मात्र के लिए भी दुरबीन की आवयकता पड़ती हो, गुरुजी की एक झलकमात्र ही दिखाई देती हो। इन्हीं परिस्थितियों का लाभ ये बाबागण गुरुघंटाल बनकर उठाते हैं, निरीह भोली-भाली जनता को जो भगवान की भक्ति, गुरु की कृपा पाने के लिए आयी है उन्हें ऐसे 'गुरुमन्त्र' कान में फूँकते हैं जिनका कोई भी अर्थ नहीं होता और शब्दों का अर्थ है भी तो दिये गये वाक्य का कोई तारतम्य नहीं, परस्पर संगति नहीं, लेकिन इन्हें क्या? ये तो जनता को कहते हैं कि- पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पण्डित भया न कोय अर्थात् पुस्तकें पढ़कर क्या फायदा? इन्हें पढ़कर तो सारे संसार के लोग मर गये, तुम तो बस हमारा दिया हुआ ही मन्त्र जपो। और वह इनके दिये गुरुमन्त्र क्या-क्या हैं? कैसे-कैसे हैं? इन्हें कभी फिर लिखेंगे। लेकिन यहाँ इतना समझ लीजिए कि शोषण किसका है? धक्के किसको खाने पड़ते हैं? तन-मन-धन किसका लुटता है? अस्मिता-इज्जत किसकी लुटती है? और अन्त में पुलिस और सेना की गोलियाँ किसको खानी पड़ती हैं? उत्तर है- मात्र और मात्र 'निरीह जनता' को।

वह जनता जो सत्य-असत्य को अलग-अलग जानती ही नहीं, वह जनता जो चमत्कारों की कथाओं पर विश्वास करके, धर्म-अधर्म का भेद भूलकर किसी एक के शरणागत हो जाती है, गुरु के प्रति निष्ठा ही उसकी जमापूंजी है, गुरु के लिए बलिदान ही उसका 'मोक्ष' है। जब उस भोली-भाली जनता को ठगा जा रहा था, तब सरकारों ने नहीं रोका, जब उस जनता को ज्ञान के स्थान पर अज्ञान बांटा जा रहा था तब किसी न्यायाधीश ने, न्यायालय ने डेरे की पड़ताल न करवायी, किसी गुप्तचर तन्त्र ने सूचनाएं नहीं दी, किसी गुरु की योग्यता की जांच नहीं की, अपितु सरकारों ने समर्पण कर दिया, नेताओं ने, अधिकारियों ने, न्यायाधीशों ने कृपा मांगी, आशीर्वाद मांगा, वोट मांगी, गद्दी मांगी और जब यह सब कुछ जनता ने देखकर समर्पण किया, तब इन्हीं सरकारों, नेताओं ने, न्यायालयों ने और न्यायधीशों ने उसी भोली-भाली निरीह जनता पर सीधे-सीधे गोलियाँ चलवा दी, किसी की पीठ पर तो किसी की छाती पर, किसी के पेट पर तो किसी के पैरों पर। जिसने ठगा, बहकाया, शोषण किया, लूटा, दुष्कर्म किया ऐसे अपराधियों के लिए हेलिकॉप्टर और जो शोषित थे, बहकाये गये थे, जिन्हें पददलित कर लूटा गया था, उन्हें गोलियों से भूनकर घसीटते हुए मुर्दाघर?

आर्यों! आर्याओं! विचारिए! सोचिए! क्या यही प्रजातन्त्र है? क्या यही कानून है? क्या यही न्याय है? यदि नहीं, तो फिर ठीक क्या है? क्या करोड़ों लोग हमारे नहीं हैं? क्या इनकी अविद्या, इनका अन्धविश्वास हमारे लिए दुखदयी नहीं है? क्या हमने कभी उन्हें बुलाया? क्या प्रेम से सत्य समझाया? क्या कभी सत्य सिद्धान्त जनाने का प्रयास किया? तो क्या इनके दुखों के भागी हम न हुऐ? न होंगे?

आइए समय रहते कुछ कीजिए! कुछ लोगों के बचाने का, सत्य जनाने का पुरुषार्थ कीजिए! आर्यमार्ग पर लाने का प्रयास कीजिए! इसी में जनता का भला है, और हमारा भी।

आर्या उपदेशिका कक्षा कैथल में आचार्या सुशीला जी के साथ आर्या उपदेशिकाएं

राष्ट्रीय आर्य निर्मात्री सभा द्वारा आयोजित दो दिवसीय सत्रों व सभा से सम्बन्धित नवीन जानकारी सभा की बेवसाईट-

www.aryanirmatrisabha.com

पर उपलब्ध है। अतः आप वहाँ से जानकारी ले सकते हैं। यह पत्रिका भी प्रत्येक मास दिनांक 10 को सभा के बेवसाईट पर डाल दी जाती है अतः पत्रिका को पढ़ने के लिए साईट के लिंक **www.aryanirmatrisabha.com/पत्रिका** पर जाएं।

आओ यज्ञ करें!

पूर्णिमा	6 सितम्बर	दिन-मंगलवार	मास-भाद्रपद	ऋतु-शरद	नक्षत्र-शतभिषा
अमावस्या	20 सितम्बर	दिन-बुधवार	मास-आश्विन	ऋतु-शरद	नक्षत्र-उ. फाल्गुनी
पूर्णिमा	5 अक्टूबर	दिन-गुरुवार	मास-आश्विन	ऋतु-शरद	नक्षत्र-उ. भाद्रपदा
अमावस्या	19 अक्टूबर	दिन-गुरुवार	मास-कार्तिक	ऋतु-हेमन्त	नक्षत्र-हस्त

हमारा महान इतिहास-महाभारत (जयसंहिता)

-आर्य सोनू, कैथल

महाभारत की रचना महर्षि वेदव्यास जी द्वारा हरयाणा के कुरुक्षेत्र में हुई। यह कौरव-पाण्डव युद्ध के साथ-साथ आर्यों के आचार व्यवहार एवं नीतियों का भी सबसे बड़ा महाकाव्य है। इसे जयसंहिता भी कहते हैं। यह विश्व का सबसे बड़ा महाकाव्य है। महाभारत में 18 पर्व हैं। भगवद्गीता इसी का अंग है। गीता का सबसे ज्यादा भाषाओं में अनुवाद हुआ है।

रचना काल- त्रिभीर्वर्षैरिदं पूर्ण कृष्णद्वैपायनः प्रभुः।
अखिलं भारतं चेदं चकार भगवान् मुनिः॥

अर्थ- मुनिवर भगवान श्री कृष्णद्वैपायन जी ने तीन वर्षों में इस सम्पूर्ण महाभारत का लेखन कार्य पूर्ण किया। महाभारत का काल (वास्तविक) लगभग 5000 वर्ष पूर्व है। किन्तु आधुनिक इतिहासकार इससे काफी कम समय महाभारत का मानते हैं जो दुराग्रह एवं भ्रम मात्र है। क्योंकि सत्यार्थ प्रकाश के 11वें सम्मुल्लास के अन्त में महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने आर्यराजाओं के नाम शासनकाल सहित लिखे हैं। महर्षि लिखते हैं इन्द्रप्रस्थ में आर्य लोगों ने श्रीमन् महाराज यशपाल पर्यन्त राज्य किया। जिनमें श्रीमन्तमहाराजे युधिष्ठिर से महाराजे यशपाल तक वंश अर्थात् पीढ़ी अनुमान 124 राजा, वर्ष-4157, मास 9, दिन-14 समय में हुए हैं। और उनके बाद मुसलमान एवं अंग्रेजों के शासन का समय मिलाकर लगभग 5000 वर्ष बैठते हैं। अतः महाभारत आज से लगभग 5000 वर्ष पूर्व का है। कुछ विद्वानों में इस बात पर भी मतभेद है कि महाभारत पहले है या रामायण। विचार करने से महाभारत का काल रामायण के बाद बैठता है, क्योंकि महाभारत में कई श्लोक ज्यों कि त्यों रामायण के हैं व कई जगह दृष्टान्त रूप में राम जी का वर्णन महाभारत में है।

प्रक्षेप- महर्षि दयानन्दजी सत्यार्थ प्रकाश में लिखते हैं कि व्यासजी ने 4400 और उनके शिष्यों ने 5600 श्लोक युक्त अर्थात् सब 10000 श्लोकों के प्रमाण महाभारत बनाया था। वह महाराज विक्रमादित्य के समय में 20,000, महाराज भोज कहते हैं कि मेरे पिता के समय में 25,000 एवं अब मेरी आधी उम्र में 30,000 श्लोक युक्त महाभारत का पुस्तक मिलता है। जो ऐसे ही बढ़ता चला तो महाभारत का पुस्तक ऊँट का बोझा हो जाएगा। इसके उपरान्त भी वर्तमान में 1 लाख से ज्यादा श्लोकों का महाभारत मिलता है। अतः स्पष्ट है कि समय-समय पर महाभारत में प्रक्षेप हुए।

प्रक्षेपों का कारण-प्रारम्भ में पोपों द्वारा अपनी रोजी-रोटी के प्रबन्ध के लिए अनेक मनगढ़न्त श्लोक महाभारत में जोड़े गये और उनके बाद अंग्रेजों द्वारा (जैसे अर्थ का अनर्थ करके वेदों का अपमान मैक्स मूलर आदि से करवाया) अनेक अनावश्यक घटनाएं हमें धर्मविचलित करने के लिए महाभारत में मिलवाई गई। आज भी अनेक घटनाओं की छाप भारतीय लोगों के मन पर है जो वैदिक धर्म लोप का कारण बनी है। जैसे एकलव्य प्रकरण, कृष्ण-राधा आदि।

महाभारत से विपरीत घटनाएं- समय के साथ-साथ अनेक गलत घटनाएं महाभारत में जोड़ी गई, जिनका महाभारत पढ़ने से समाधान होता है। जैसे- कर्ण कुन्तीपुत्र नहीं था, कृष्ण की पत्नी केवल रूक्मणी थी, एकलव्य का अंगुठा आचार्य द्रोण ने मांगा ही नहीं। जरासंध की जननी एक ही थी। द्रोपदी केवल युधिष्ठर की पत्नी थी। हनुमान जी का वर्णन महाभारत में नहीं है जो दिखाया जाता है। श्री कृष्ण चोर-जार शिरोमणी नहीं थे। कौरवों की उत्पत्ति घड़ों से नहीं अपितु उनकी 11 माताओं की कोख से हुई थी। आर्य पुरुषों के आचार-व्यवहार, नीति, दिनचर्या एवं कठोर व्रत आदि देखकर स्वतः प्रतीत होता है कि ये घटनाएं महाभारत के बाद से आज तक दुष्टों द्वारा स्वार्थसिद्धि हेतु में जोड़ी गई हैं।

महान नीतिशास्त्र- महाभारत महान नीतिशास्त्र भी है। इससे श्रीकृष्ण नीति, विदुर नीति, नारद नीति आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन है। इन नीतियों को पढ़कर हमें विभिन्न विपत्तियों का समाधान, श्रेष्ठ आचरण एवं बड़ों, छोटों व बराबर वालों से जो उत्तम व्यवहार करना चाहिए, की शिक्षा भी मिलती है। अतः नीति निपुण जो होना चाहते हैं उनके लिए विशेष रूप से महाभारत पठनीय है। इन श्रेष्ठ उपदेशों के कारण से कुछ लोग महाभारत को पंचम वेद भी कहते हैं।

वेद विज्ञान का दिग्दर्शन- महाभारत में अनेक प्रकार के विचित्र हथियारों का वर्णन आता है। जिनको आज तक के वैज्ञानिक भी बना नहीं पाए। यथा- श्रीकृष्णजी का सुदर्शन एवं ब्रह्मास्त्र व नारायणास्त्र आदि। इनके अतिरिक्त महाभारत में सर्जरी, गोदुग्ध का औषधीय महत्व, अणु-शिल्पविद्या, तोप एवं अन्य यन्त्र, वृक्षों के विषय में विस्तृत जानकारी उपलब्ध है।

ऐतिहासिकता- भारतीय संस्कृति को विकृत एवं नष्ट करने हेतु अनेक पश्चिमी तथा-कथित विद्वान महाभारत को काल्पनिक एवं कोरा झूठ कहते हैं। हालांकि विभिन्न गलत घटनाओं से महाभारत में विश्वास घटा है किन्तु फिर भी उसे बिल्कुल ही नकारना उचित नहीं है। विदेशियों के साथ-साथ डा. राधाकृष्णन् एवं गाँधी भी महाभारत को कल्पना मानते थे। महाभारत की ही दो घटनाओं से महाभारत की ऐतिहासिकता सिद्ध हो जाती है। प्रथम जब मौसलपर्व में यादवों का विनाश होता है तो श्रीकृष्ण एवं बलराम जी भी रोगयुक्त होकर वीरान जंगल में देह छोड़ देते है, बाद में उनके शरीरों की खोज एवं अन्येष्टि अर्जुन द्वारा करवाई जाती है एवं दूसरी अन्त्येष्टि कर्मों से निवृत हो अर्जुन जब यादवों की स्त्रियों, बालकों व वृद्धों को हस्तिनापुर ले जा

शेष अगले पृष्ठ पर

संध्या काल

आश्विन मास, शरद ऋतु, कलि-5118, वि. 2074
(7 सितम्बर 2017 से 05 अक्टूबर 2017)
प्रातः कालः 5 बजकर 45 मिनट से (5.45 A.M.)
सांय कालः 6 बजकर 45 मिनट से (6.45 P.M.)

कार्तिक मास, हेमन्त ऋतु, कलि-5118, वि. 2074
(6 अक्टूबर 2017 से 4 नबम्बर 2017)
प्रातः कालः 6 बजकर 15 मिनट से (6.15 A.M.)
सांय कालः 6 बजकर 00 मिनट से (6.00 P.M.)

पिछले पृष्ठ का शेष-

रहे होते हैं तो कुछ डाकू उन्हें अकेला मानकर लठ्ठों से उनके दल पर हमला करके स्त्रियों व धन को लूट लेते हैं। तब अर्जुन मुश्किल से गान्डीव धनुष पर डोरी चढ़ा पाते हैं, चढ़ाते हैं तो चला नहीं पाते और चलाते हैं तो उनके तीर मार्ग मे ही नष्ट हो जाते हैं। इन दोनों घटनाओं में महाभारत के दो नायकों के सामने जो खराब स्थितियाँ बनती है, वो महाभारत की ऐतिहासिकता को सिद्ध करती है। यदि महाभारत कल्पना मात्र होती तो रचनाकार दो नायकों का ऐसा दुखद अन्त न करवाता एवं तीसरे अर्जुन का इतना अपमान न करवाता की एक स्त्री का अपमान करने और सहने वालों तक को जो वीर शर शैया पर सुला देता है, वही वीर अनेक स्त्रियों के अपहारणकर्ता तुच्छ लुटेरों को भी नहीं रोक पाता। अतः सिद्ध है कि महाभारत काल्पनिक नहीं बल्कि ऐतिहासिक है।

पढ़ने का लाभ- यह तो स्वतः सिद्ध है कि महाभारत भ्रातृप्रेम नारी के आदर्श एवं सम्मान, सदाचार धर्म के स्वरूप, वर्ण एवं आश्रमों के धर्म, गृहस्थों के आदर्श, मोक्ष का स्वरूप, प्राचीन राज्य का स्वरूप, वीरता एवं शौर्य का महान इतिहास है। अतः इसे पढ़ने वाला और इसी के अनुरूप आचरण करने वाले को भ्रातृप्रेमी, सदाचारी धार्मिक, आदर्श गृहस्थ, मोक्ष का अधिकारी वीर एवं शौर्य सम्पन्न बनने में लाभ मिलेगा, इसमें मुझे कोई संशय नहीं है।

राम ने शम्भूक को क्यों मारा?

-आचार्य अशोकपाल

यह एक यक्ष प्रश्न है, जो साम्प्रदायिकता, जातियता, स्वार्थ से भरे लोगों द्वारा अक्सर पूछा जाता है। जब इनसे पूछा जाता है कि कौन राम? कौन शम्भूक? वाल्मिकी रामायण में तो किसी शम्भूक का जिक्र नहीं? अस्तु।

जो भी हो, ऐसा समय रहा है जब किसी का नाम 'राम' शब्द के बिना पूरा न होता था जैसे शोभाराम, छोटूराम, हरिराम, सुखीराम, राम प्रसाद, राममेहर, रामसुख आदि। सुना जाता है जब महान स्वतन्त्रता सेनानी अशफाक उल्ला खां बीमार थे तो 'राम-राम' पुकारते थे। मौलवी उसे काफिर घोषित करने वाले थे कि पता चला कि वह अपने परममित्र रामप्रसाद बिस्मिल को याद कर रहे थे। यह है 'राम' सभ्यता, संस्कृति के रक्षक, वाल्मिकी रामायण के नायक श्री राम का चरित्र जो विश्व के जनमानस को अपनी और आकृष्ट करता ही आया है। उन्हीं से प्रभावित किसी राजा राम ने 'शम्भूक' का वध किया हो, इतिहास उपलब्ध नहीं पर अब जनश्रुति हो चली है। 'शम्भूक' को ऋषि, भक्त, विद्वान, धार्मिक, महान समाजसुधारक न जाने किन-किन विशेषणों से शोभित किया जाता है और प्रचलित है कि वह भी सामान्य शूद्र परिवार से थे, इसीलिए राम ने शूद्रों के प्रति घृणा के कारण 'शम्भूक' को मार डाला।

25 अगस्त को मुझे 'शम्भूक' याद आ गया, जब 'राम-रहीम' नामधारी, गरीबों का भगवान, बिगड़ी बनाने वाला, कृपा बरसाने वाला, मैसेंजर ऑफ गॉड को बलात्कार का दोषी घोषित किया गया और उसे आने वाले 20 वर्षों के लिए जेल की काल-कोठरी में डालने का आदेश सुनाया गया। वो तो भक्तों ने मिडिया की गाड़ियां तोड़कर गलती कर दी, नहीं तो कोई ना कोई चैनल 'राम-रहीम' को शम्भूक घोषित करवा ही देता! अब कौन सी देर हो गई है? जिस 'राम रहीम' के श्री चरणों में देश-भर के राजनेता गिड़गिड़ाते रहे हों, उनसे वोट की भीख मांगते रहे हों, जनता की गाढ़ी कमाई का पैसा उसको समर्पित करते रहे हों तो कब उसे 'शम्भूक' घोषित कर दिया जाय पता नहीं। अपने देश में ऐसे शम्भूकों की सूची लम्बी है यथा 'आशाराम', 'रामपाल' 'रामवृक्ष', 'नित्यानन्द' आदि। वैसे हर गली में 'शम्भूक' बैठे हैं- बूझा बनकर, ओझा बनकर, ज्योतिषी बनकर, हस्त-रेखा विज्ञानी बनकर, साधु-संन्यासी बनकर, लाल, नीले, पीले, हरे रंगीन वस्त्रधारी जनता का शोषण करते दिखाई पड़ ही जाते हैं और जनता है कि उनके लिए सर्वस्व न्यौछावर करने को तैयार खड़ी दिखाई पड़ती है। आपने यह दृश्य पंचकुला में भी देखा है। अन्य शम्भूक जब कोर्ट जाते हैं तब भी जनता सड़कों पर लेटी, बैठी, प्रतीक्षा करती झुण्ड में दिखाई देती है। इसी भोली जनता को चेले-चेलियां, फोलोवर, भक्त कहा जाता है।

पर यक्ष प्रश्न अब भी वही है- राम ने शम्भूक को क्यों मारा? आइये विचार करते हैं! युवाओं, सज्जनों! वास्तव में आजकल शम्भूकों, नेताओं, व्यापारियों का गठजोड काम करता है, राज्य करता है, इसी कारण उन्हें पालित-पोषित, महिमामण्डित किया जाता है। अपने-अपने स्वार्थ पूर्ति हेतु गॉडफॉदर, पोप, मौलवी, बाबा बनाये जाते हैं, धार्मिक आस्था की आड़ में, मजहब के बुर्के में छिपकर शोषण करना धर्म-निरपेक्ष तंत्र में कितना सरल है, आप जानते ही हैं। आस्था का लबादा ओढ़कर ईद पर पशुओं की हत्या कीजिए-कुर्बानी कहलाएगी! आस्था के नाम पर तीन तलाक, हलाला करवाते शम्भूक ही शम्भूक दिखाई पड़ेंगे। चंगाई सभा चलाते शम्भूक रूपी पोप दिखाई देते हैं। आश्चर्य है! लेकिन यह गठजोड़ पनपा कैसे? यह धर्म-निरपेक्षता (धर्म के प्रति उदासीनता) आई कैसे? एक ओर 'सत्यमेव जयते' को राष्ट्रीय उद्घोष घोषित करते हैं वहीं दूसरी ओर आस्था की सत्यता को प्रमाणित किये बिना ही उसको स्वीकार कर लिया जाता है और आस्था के नाम पर चोट होते ही उसके पक्ष में बिना सोचे-समझे कूद पड़ते हैं, दोनों एक साथ कैसे चल सकते हैं?

जब 'राम-राज्य' अर्थात् श्रीराम के सिद्धान्तों के अनुसार अर्थात् वैदिक सिद्धान्तों के अनुसार राज्य था, तब शम्भूकों को जनता के शोषण का अधिकार नहीं था। शम्भूकों को मानवीय अपराधी घोषित कर, गिन-गिन कर, चुन-चुन कर मारा जाता था। केवल विद्वान, धार्मिकों (जो विद्या धारण कर लेता था वही विद्वान कहलाता था और विद्या प्राप्त करने का सबको अधिकार था।) को ही धर्म प्रचार का अधिकार था। तभी अपना राष्ट्र विश्व गुरु था। देश, धर्म के सम्बंध में निर्णित था। आज निर्णय की बात छोड़िये, मतों की गुलामी है! कितना भय है? कितना आतंक है? इन शम्भूकों का?

आईये मिलकर शम्भुकों को पालित-पोषित करने वाली, इन्हें कुक्करमुत्तों की भांति बढ़ानेहारी सेकुलर व्यवस्था को दग्ध बीज करने का संकल्प लें। केवल सत्यधर्म को बढ़ने का अवसर दें- जिससे पुनः देश में सुख-समृद्धि, वैभव-स्वतन्त्रता-धर्म का वास हो।

आध्यात्म के नाम पर लोकहित के कार्यों में निष्क्रियता धर्म नहीं

पुरानी पद्धति के पण्डित लोग लोक-हित के कार्यों से विरक्त हो जाते हैं। निरे नाम का पर घोटा लगाने वाले, संसार-सुधार में कुछ भी समय नहीं देते प्रत्युत व्यवहारिक कर्मों से घृणा करने लग जाते हैं। कुछ-एक इने-गिने सन्त अन्य अवश्य ऐसे हुए हैं जिन्होंने अपने शिष्यों को समाज-रक्षा के लिये प्रेरित किया परन्तु जिस संसार का उपकार कर्म करना स्वामी जी ने आर्य समाज के कर्त्तव्यों में मुख्य कर्त्तव्य स्थापित किया, देश-हित के लिये दौड़-धूप की और एक बड़े भारी परिणाम में शिल्प-कला का उद्योग करना आरम्भ किया, इस प्रकार इस दिन तक किसी धर्माचार्य ने नहीं किया था।

वैदिक काल के अनन्तर आर्यावर्त में जितना धार्मिक साहित्य संचित हुआ है उसमें निष्क्रियवाद को अति प्रधानता दी गई है। निष्क्रियता को ही एक प्रकार से धर्म बताया गया है। ऐसे साहित्य में कर्मकाण्ड की इतनी अवहेलना की गई है कि इसे आज्ञानियों के बाँधने के लिये खूँटा वर्णन किया। कर्म-रूप धर्म का खण्डन करते हुऐ कई ज्ञानी ध्रुव पुरूष, पुरूष भाषा में कर्मकाण्डियों को पशु तक कह गये हैं। हम मानते हैं कि इस निष्क्रियवाद के चरण-चिह्न महाभारत-काल में ही चमकने लग गये थे। इनको मिटाने के लिये उस समय के परम कर्मयोगी श्रीकृष्ण देव ने पूर्ण बल लगाया था। वे उस समय मिटे तो नहीं किन्तु ढ़ाई सहस्त्र वर्ष के पश्चात् ऐसे चमके कि उन्होंने सारे साहित्य को चकाचौंध लगा दी। बुद्ध महाराज के प्रचार ने अकर्मण्यता -वाद को अति पुष्ट किया। वही समय निष्क्रियवाद का यौवन-युग कहा जा सकता है। निष्क्रिय धर्म का पालन कोई भी मनुष्य नहीं कर सकता। क्रिया के किये बिना किसी की भी प्राण यात्रा नहीं चल सकती। अपने विचारों को प्रकट करने के लिये भी क्रिया की आवश्यकता होती है। और तो और, निष्क्रियवाद धर्म है, ऐसी समझ, ऐसा ज्ञान और ऐसी धारणा भी सूक्ष्म क्रिया से ही उत्पन्न होती है। सृष्टि में क्रिया स्वभाव से ही हो रही है। प्रत्येक परमाणु गतिमान् है। यदि एक भी अणु एक पल के लिये निष्क्रिय हो जाये तो सारा ब्रह्माण्ड रूक जाये। उसी क्षण में उसका सर्वनाश हो जाये। हमारा शरीर इस ब्रह्माण्ड का एकांशमात्र है। जो नियम समष्टि में काम कर रहा है। वही इस व्यष्टि देह में भी कार्य करता है। इस करण गतिशील संसार में निष्क्रियता का स्वप्न देखना भी सर्वथा असम्भव है। निष्क्रियता धर्म नहीं है। धर्म तो कर्मात्मक है। वह पुरूषार्थ से उपार्जित है। क्रिया से निष्पन्न होता है। इसलिये ज्ञानियों ने धर्म का लक्षण प्रेरणा वर्णन किया है ऐहिक और पारलौकिक सुख-सिद्धि का साधन बताया है। स्मार्त्त धर्म के व्याख्याता भगवान् मनु भी धर्म लक्षण क्रिया रूप ही वर्णन करते हैं। यदि अक्रिय रूप धर्म हो तो भेड़ें और बकरियाँ कभी असत्य भाषण नहीं करती। मिमियाने के बिना वे दूसरा कोई शब्द नहीं बोलती।

तब तो वे सत्यवादियों में सर्व-शिरोमणि हो जाएँ। भोले-भाले मृग मनुष्य की पाँव की आहट सुनकर कोसों दूर भाग जाते हैं। वे कभी किसी से हिंसा नहीं करते परन्तु कोई भी अकर्मवादी उनको परम दयालु नहीं मानता। एक अन्धा, बहरा, मूक और विकल शरीर मनुष्य-वन में जीवन के दिन काटता हुआ न अशुभ सुनता है और न अशुभ देखता है, न अशुभ बोलता है और न अशुभ करता है, परन्तु वह मुनि नहीं कहला सकता। उन्मत्त अथवा मूर्च्छित मनुष्य अशुभ संकल्प-विकल्प से शून्य होता है पर वह महात्मा नहीं माना जाता। गहरी नींद में कोई अशुभ क्रिया नहीं होती परन्तु वह समय पुण्य उपार्जन का समय नहीं समझा जाता। अशुभ विचारों को, और अशुभ आचारों द्वारा धक्का देकर भीतर से निकाल देना, उनको अपने निकट न आने देना शुभ सम्पत्ति-सम्पादक का सर्वोत्तम साधन है। सह साधन क्रिया-जन्य है। यही कर्म है। आर्यों में जब से निष्क्रियवाद ने घर किया है तभी से इनका विनिपत होना आरम्भ हुआ है। जातियों में जो नर-रत्न होते हैं वे प्रायः धार्मिक भी हुआ करते हैं। समाज के लिये उनका जीवन अत्यन्त उपयोगी होता है। उनका समाज से पृथक हो जाना समाज को अवनत कराना है। निष्क्रियवाद के निष्ठावान् सज्जन जन समूह से दूर भागते हैं। उनको समाज संशोधन, समाज सुधार और समाज संरक्षण कर्त्तव्य-कर्म ज्ञात नहीं होते। वे उलटे इन कर्मों से घृणा करने लग जाते हैं। यही कारण है कि अकर्मवाद की पोषण पुस्तकों में पुरूषार्थ धर्म का निरादर है। गृहस्थ को पाप और बन्धन वर्णन किया है। माता-पिता, पुत्र, कलत्र आदि सम्बन्धों को दुःख का कारण माना गया है। क्षात्र धर्मादि उत्तम धर्मों को प्रशंसित नहीं समझा गया। आर्य प्रजा के अनेक दीप्तिमान रत्न इसी अकर्मवाद की उलझन में उलझकर अपनी योग्यता नष्ट कर रहे हैं। इसकी उज्जवल क्रान्ति से किसी ने कुछ भी लाभ नहीं उठाया। इसी निष्क्रियवाद की बेल के फल का नाम त्यागवाद है। त्यागी कहलाने में लोग जब से मुक्ति और महत्ता मानने लगे हैं। तब से आर्य जाति में नाना अनिष्टों की, दुःखों की और अभावों की सृष्टि हुई है। यहाँ लाखों त्यागी वास करते हैं। उनकी आँखों के सामने, उनकी कुटियाओं के पास, उनकी कन्दराओं के निकट और उनके आश्रमों के समीप दिन दोपहर में उनका धर्म-धन लुटा जा रहा है। लोग अपने पुरातन धर्म का परित्याग कर रहे हैं। अनाथों की बिलबिलाहट और कृश-प्रजा का करूण-क्रण्दन हो रहा है। इसे देखकर पराये भी पिघल गए हैं। परन्तु इधर ये अपने सर्वत्यागी हैं कि दुर्दिन-दलित दरिद्र बंधुओं पर दूर खड़े दया दिखाने में भी आनाकानी करते हैं। इस संकीर्णता का प्रबल कारण है यहाँ के त्यागियों ने त्याग के अर्थ छुआछूत समझ रक्खे हैं। इसका तात्पर्य घृणा करना, पृथक हो जाना, संकुचित बनना और पीड़ित प्राणियों को भी क्रियात्मक सहायता न देना निकाला है। सच्चा त्याग वही है जिसमें घृणा का त्याग है, वैर विरोध का त्याग है। दूसरे को सुख देने के लिए अपने प्राणों तक की भी ममता न करना सच्चा त्याग है। यह परम त्याग ईश्वर-भक्ति और प्रजा से उत्पन्न होता है। भक्ति और प्रीति पुरुषार्थ और शुभ क्रिया के बिना प्राप्त नहीं होती। स्वामी जी महाराज ने समाज-संस्कार करते समय क्रियात्मक धर्म का निरूपण किया है। उन्होंने कई स्थलों में कहा है कि पर-हानि पाप और परोपकार पुण्य है। उन्होंने अपने ग्रन्थों में गृहस्थादि आश्रमों और चारों वर्णों को मोक्ष धर्म के साधनों का वर्णन किया है।

स्वामी सत्यानन्द की पुस्तक 'श्रीमद्दयानन्द-प्रकाश' से साभार

शम्भूक व महिसासुर का महिमामण्डन क्यों?

महाभारत युद्ध के पश्चात् जब वैदिक (आर्य) व्यवस्थाएं छिन्न-भिन्न होने लगी, कर्म आधारित वर्ण व्यवस्था समाप्त होने लगी, आश्रम व्यवस्था का ह्रास होने लगा और उसके स्थान पर जन्म पर आधारित जाति व्यवस्था स्थापित होने लगी तो समाज में ऐसी विषम परिस्थितियां उत्पन्न हुई कि एक वर्ग विशेष ने दण्ड देने की व्यवस्था को इस प्रकार स्थापित कर दिया कि हर परिस्थिति में चाहे दोष किसी का भी हो एक वर्ग विशेष को ही दण्ड दिया जाने लगा। उस वर्ग का इतना शोषण हुआ कि जब उस वर्ग में ऋषि दयानन्द व अन्य सुधारकों के प्रयास से चेतना जागृत हुई तो उन्होंने इतिहास में दण्डित हर पात्र को अपने से जोड़ लिया और उसका महिमामण्डन प्रारम्भ कर दिया। उस वर्ग के अन्दर यह भावना पनपी कि जैसे उनको अकारण दण्डित किया जाता रहा है, उसी प्रकार शायद हर उस पात्र को दण्डित किया गया है जिनका इतिहास में शासकों द्वारा दण्ड देने का वर्णन मिलता है, चाहे इसमें रावण, हिरण्यकश्यप, शम्भूक, महिषासुर आदि रहे हो, हाँलाकि इनमें अनेक पात्र काल्पनिक भी हैं।

व्यवस्थाएं परिवर्तित होती रहती हैं, जब आज मध्ययुग वाली परिस्थितियां नहीं हैं तो यह भी निश्चित है कि प्रचीन काल में मध्य युग की परिस्थितियां नहीं थी। परिवर्तन केवल आज ही नहीं हुआ है, परिवर्तन पहले भी होते रहे हैं, आज जाति विशेष के शोषण की व्यवस्था नहीं है तो पहले ऐसा भी रहा है कि जाति विशेष का शोषण नहीं था। जब आज जाति के बन्धन धीरे-धीरे टूट रहे हैं, और वर्ण व्यवस्था की ओर बढ़ रहे हैं तो पहले भी वर्ण व्यवस्था स्थापित रही है। इसीलिए समाज के इस प्रकार की मानसिकता के लोगों को अपनी सोच में परिवर्तन करना चाहिए जो ये सोचते हैं कि इतिहास में हमेशा से अकारण ही दण्ड दिया जाता रहा है और हर दण्डित व्यक्ति का शोषण ही हुआ है और उनका महिमा मण्डन किया जाना चाहिए। इसी कारण शम्भूक व महिषासुर जैसे पात्रों का महिमा मण्डन किया जाता रहा है। हमें सत्य और असत्य का ठीक-ठीक निर्णय करके समाज में उपस्थित शम्भूकों को पहचान कर न्याय के पक्ष में खड़े होकर लोगों को शोषण से बचाना चाहिए।

-आचार्य सतीश जी

07 सितम्बर-05 अक्टूबर 2017 **आश्विन** ऋतु- शरद

सोमवार	मंगलवार	बुधवार	गुरुवार	शुक्रवार	शनिवार	रविवार
			पूर्वाभाद्रपदा कृष्ण प्रतिपदा 7 सितम्बर	उत्तराभाद्रपदा कृष्ण द्वितीया 8 सितम्बर	रेवती कृष्ण तृतीया 9 सितम्बर	अश्विनी कृष्ण चतुर्थी/पंचमी 10 सितम्बर
भरणी कृष्ण षष्ठी 11 सितम्बर	कृतिका कृष्ण सप्तमी 12 सितम्बर	रोहिणी/मृगशिरा कृष्ण अष्टमी 13 सितम्बर	आर्द्रा कृष्ण नवमी 14 सितम्बर	पुनर्वसु कृष्ण दशमी 15 सितम्बर	पुष्य कृष्ण एकादशी 16 सितम्बर	आश्लेषा कृष्ण द्वादशी 17 सितम्बर
मघा कृष्ण त्रयोदशी 18 सितम्बर	पू० फाल्गुनी कृष्ण चतुर्दशी 19 सितम्बर	उ० फाल्गुनी कृष्ण अमावस्या 20 सितम्बर	हस्त शुक्ल प्रतिपदा 21 सितम्बर	चित्रा शुक्ल द्वितीया 22 सितम्बर	स्वाती शुक्ल तृतीया 23 सितम्बर	विशाखा शुक्ल चतुर्थी 24 सितम्बर
अनुराधा शुक्ल पंचमी 25 सितम्बर	अनुराधा शुक्ल षष्ठी 26 सितम्बर	ज्येष्ठा शुक्ल सप्तमी 27 सितम्बर	मूल शुक्ल अष्टमी 28 सितम्बर	पूर्वाषाढ़ा शुक्ल नवमी 29 सितम्बर	उत्तराषाढ़ा शुक्ल दशमी 30 सितम्बर	श्रवण शुक्ल एकादशी 1 अक्टूबर
धनिष्ठा शुक्ल द्वादशी 2 अक्टूबर	शतभिषा शुक्ल त्रयोदशी 3 अक्टूबर	पूर्वाभाद्रपदा शुक्ल चतुर्दशी 4 अक्टूबर	उत्तराभाद्रपदा शुक्ल पूर्णिमा 5 अक्टूबर	विजय दिवस आश्विन शुक्ल दशमी		

Rishi Dayanand - His Life And Work -Saroj Arya, Delhi

The scope of this book does not permit going into all the detail of Dayanand's wanderings in quest of soul. For full fifteen years from 1845 to 1860, young Dayanand wandered almost all over India. He went from place to place inquiring about yogis and sudhus. Whenever he learnt that at a certain place there lived a yogi or a sanyasi, he would dash for it. He visited all the Hindu places of pilgrimage, and some he visited more than once. In his ceaseless search for scholars of renown and men of wisdom, he searched the innermost part of the Himalayas, the Vindhyas and the Aravallis. He had to encounter great dangers in his travels, but he never lost his presence of mind. There were dangers when a petty slip of the foot might plunge him over a precipice into the roaring torrent below. At some places he would find his way back to thick growth of thorny, blushes but undaunted, he would move on, walking through prickly thorns, which literally tore his flesh into shreds. On winter nights, in benumbing cold the young wanderer would be seen wending his lonely way, with surprisingly inadequate clothing. For days and he had nothing to eat but what our hero received in the lap of nature during this period of his life. It fitted him for the life which he was to lead in the years to come.

Once on his way to the Himalayas, Dayanand happened to halt at the famous Okhi Math. The Mahant (owner or caretaker of a religious place) of the Math was impressed by the personality and wisdom of Dayanand. Anxious to keep him as his disciple, he gave him a very tempting offer.

"If you become our disciple," he said, "you will be the master of all our wealth. Thousands of our followers will be at your service."

The offer held out a brilliant prospest of a happy future. But the Mahant did not know that Dayanand was not the man to be seduced by these allurements. The latter's reply gives us a glimpse into his character.

"Mahantji, did you think it is for this pleasure that I discarded all my worldly possessions and comforts ? You seem to have no idea of the treasures, far more valuable than these, for sake of which I have voluntarily given up the opulence of my paternal home. Tempt me not, for my heart is set for the acquisition of true knowledge."

The Mahant had never witnessed such profound contempt for wealth, and dumb-founded. He praised Dayanand's strengh of purpose and requested him to stay for a few days. But Dayanand declined. And after sometime he reach Mathura in the Pathshala (school) of great Swami Virjanand.

Virajanand- is the name of our Blind monk who was brought up in the lap of adversity. He was born in the house of a brahmin, Narain Dutt by name at Kartarpur. He was five years old when he had an attack of small-pox which left him blind for life. But worse was to follow. He was hardly eleven when the deaths of his father and mother left him an orphan. He was now at the mercy of his brother, whose wife happened to be a very selfish and short tempered woman, who would often torment the poor boy and hint that he should better leave her house. His brother was too timid to protest and he felt that both of them wanted to get rid of him. He was conscious of his helplessness and yet was too spirited to submit to this. Sad at heart, he bade good-bye to his paternal home, and cast himself without any support in the wide world. To be continued...

द्विदिवसीय आर्य/आर्या प्रशिक्षण के बाद सत्रार्थियों के अनुभव

सत्र में आने से पहले मैं नहीं जानता था कि ईश्वर क्या है, उसकी उपासना क्या है, उसकी उपासना करने की प्रक्रिया क्या है। सत्र में आने के बाद मुझे पता चला कि धर्म क्या है, राष्ट्र क्या है, धर्म का मूल क्या है, वेद क्या है मुझे अनुभव मिला है कि बचपन से परिवार से समाज से मुझे जो ज्ञान ईश्वर के विषय में, राष्ट्र के विषय में, उपासना पद्धति के विषय में तो था पर आर्य समाज के पहले सत्र को लेने के पश्चात् मुझे पता चला कि ईश्वर तो निराकार है, निरूप है। मुझे अभी बहुत कुछ सीखना है आर्य समाज है।

मैं पूर्ण तन-मन व धन से आर्य निर्माण सभा के प्रति समर्पित हूँ।

नाम : प्रदीप सैनी, आयु : 24 वर्ष, योग्यता : डिप्लोमा इन्जी., पता: ग्राम जुरेहरा, भरतपुर, राजस्थान

---

1. मुझे अपने जीवन जीने की दिशा की प्राप्ति हुई है। 2. अपने धर्म के बारे में वेदी में हुई त्रुटियों के बारे में पता लगा। 3. बाह्य आडम्बरों द्वारा आर्थिक शोषण के बारे में पता लगा। 4. अपने धर्म की जानकारी सही प्राप्त हुई। 5. वेदों के नियमों व उनके बारे में जानकारी मिली। 6. अपने देश की वर्तमान स्थिति का ज्ञान हुआ। 7. मूर्ति पूजा एक आडम्बर है ईसका पूर्ण रूप से अर्थ समझ आया। असलियत के बारे में ज्ञान प्राप्त हुआ। 8. अपने जीवन के कीमती समय की अधंकार में व्यर्थ जीने से बचाया आर्य बनकर।

जिस तरह मैं अन्धकार से बाहर आया उसी तरह अपने मित्रों तथा मिलने वालों को आर्य बनाऊंगा। तन-मन-धन से हर समय तैयार रहुँगा।

नाम: सौरव, आयु : 26 वर्ष, योग्यता : बी.ए., पता : पुन्हाना, मेवात, हरियाणा

मुझे इस सत्र में आकर बहुत अच्छा लगा। हमें बहुत सी उन बातों एवं इतिहास को बारे में पता चला जिनको गलत तरीके से लोगों व समाज को पढ़ाया जाता है। हमें अपने पूर्वजों के इतिहास के बारे में पता चला जिसको इतिहासकारों ने गलत तरीके से समाज के सामने पेश किया। हमें हमारे पूर्वजों के बारे में भी ठीक-ठीक ज्ञान दिया गया। विशेषकर श्रीकृष्ण व श्रीराम, हनुमान के बारे में जिनकी लोग पूजा के नाम पर तिरस्कार करते थे, उनका उपमान करते थे। तथा हमें मूर्ति पूजा के दुष्परिणामों के बारे में भी बताया। अनेकों गलत धारणाओं एवं अंधविश्वास के बारे में भी बताया।

राष्ट्रीय आर्य निर्मात्री सभा की इस महान कार्य में लोगों से सम्पर्क करके इन्हें इस सभा के सत्रों में आने के लिए अनुग्रह करेंगे तथा जहां संभव हो सके लोगों को आर्य बनाने का प्रयत्न करेंगे।

नाम: मनोज आर्य, आयु: 19 वर्ष, योग्यता: इन्जीनियर, पता: बसई, नुँह, हरियाणा

मुझे इस दो दिन के सत्र में बहुत अच्छा ऐश्वर्य ज्ञान मिला तथा यह महसूस हआ कि आर्य समाज सबसे श्रेष्ठ विचारों का और वैदिक अनुसार व नियम अनुरूप है तथा अन्धविश्वासों से मक्ति दिलाता है। आज के युग में राष्ट्र निर्माण के लिए आर्य होना अति आवश्यक है तथा में मानता हूँ कि जहां तक हो सके सभी नौजवानों को इसके बारे में ज्यादा-ज्यादा प्रचार-प्रसार करना होगा।

अत: यह गर्व के साथ नई जिन्दगी की शुरूआत नये विचारों से है। आर्यसमाज के बारे में जो मिला उस पर अमल करूंगा तथा सत्यार्थ प्रकाश को सम्पूर्ण पढूंगा।

राष्ट्र निर्माण में सहयोग दूंगा तथा अपने मित्रों को सत्र में आने के लिए प्रेरित करूंगा।

नाम: बनवारी लाल, आयु: 52 वर्ष, योग्यता: बी.ए., बी.एड. , पता: नूंह, हरियाणा

राष्ट्रीय आर्य छात्रसभा के प्रचारक डॉ. अंकित आर्य द्वारा ईन्टर कॉलेज पतला, मोदी नगर में प्रचार

आर्य निर्माणशाला में विभिन्न स्थानों पर निर्मात्री सभा के आचार्यों द्वारा आर्य व आर्या निर्माण

स्वामी व प्रकाशक आचार्य हनुमत्प्रसाद द्वारा सांगोपांगवेद विद्यापीठ, आर्ष गुरुकुल, टटेसर-जौन्ती, दिल्ली-81 से प्रकाशित

कृण्वन्तो विश्वमार्यम् - समाचार पत्र मे छपे लेखों तथा विचारों से सम्पादक का पूर्णतया सहमत होना आवश्यक नहीं है। क्योंकि अनवधानतावश त्रुटि एवं मतभिन्न होना सम्भव है। सभी न्यायिक विवाद दिल्ली में निपटाये जाएंगे।